# इकाई 6 इन्द्रियों का अभिप्राय, संख्या तथा स्वभाव

**इकाई की रूपरेखा**


6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 गीता का सामान्य परिचय

6.3 इन्द्रियों का अभिप्राय

- 6.3.1 इन्द्रिय शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ
- 6.3.2 गीता में इन्द्रिय का अभिप्राय
- 6.3.3 अन्य दार्शनिक सम्प्रदाय में इन्द्रिय

6.4 इन्द्रियों की संख्या

6.5 इन्द्रियों का स्वभाव

6.6 सारांश

6.7 शब्दावली

6.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.9 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर


## 6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- गीता का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- इन्द्रिय शब्द के व्युत्पत्तिपरक अर्थ से परिचित हो जायेंगे।
- दार्शनिक सम्प्रदाय में इन्द्रिय के अर्थ से सुपरिचित हो सकेंगे।
- गीता में इन्द्रियों के अभिप्राय से अवगत हो सकेंगे।
- गीता में इन्द्रियों की संख्या से परिचित हो जायेंगे।
- गीता में इन्द्रियों के स्वभाव से अवगत हो सकेंगे।
- आप संस्कृत भाषा की शब्दावली स्मरण कर पायेंगे।

## 6.1 प्रस्तावना

इकाई संख्या 6 गीता में इन्द्रियनिग्रह खण्ड के अन्तर्गत आती है । इसके अन्तर्गत इन्द्रियों का अभिप्राय, इन्द्रियों की संख्या, इन्द्रियों का स्वभाव का परिचय दिया गया है।

इन्द्रियाँ स्वभाव से बहिर्मुखी है अर्थात् सांसारिक विषयों की ओर दौड़ती है। इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाने के लिए उनका निग्रह करना आवश्यक है । गीता में इन्द्रिय निग्रह से तात्पर्य है कि जब कोई मनुष्य अपनी इन्द्रियों को सांसारिक विषयों से हटाकर एक विषय (परमात्मा) में नियन्त्रित कर ले उसे ही इन्द्रियनिग्रह कहते है ।

संकल्प–विकल्पात्मक मन इन्द्रियों के माध्यम से ही सांसारिक विषयों में रमण करता है और जब इन्द्रियनिग्रह के द्वारा इन्द्रियों का व्यापार रूक जाता है तो मन भी अध्यवसाय बुद्धि के अनुसार अभीष्ट लक्ष्य या परमात्मा की प्राप्ति के लिए अग्रसर हो जाता है ।

## 6.2 गीता का सामान्य परिचय

विश्व साहित्य में गीता का अद्वितीय स्थान है । दार्शनिक परम्परा में गीता प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत स्मृति–प्रस्थान के रूप में गृहीत है । गीता भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा मोहग्रस्त अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित करने के लिए दिया गया उपदेश है । यह साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीमुख से निःसृत परम रहस्यमयी दिव्य वाणी है । इसमें स्वयं भगवान् श्रीकष्ण ने अर्जुन को निमित्त बनाकर मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए उपदेश दिया है । इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण ने अपने हृदय के बहुत ही विलक्षण भाव भर दिये हैं, जिनका आज तक कोई पार नहीं पा सका और न पा ही सकता है । गीता महाभारत का ही अंश है, महाभारत के अन्तर्गत भीष्मपर्व के 25 वें अध्याय से लेकर 42 वें अध्याय तक 700 श्लोकों में लिखा गया है । यह ग्रन्थ अठारह अध्यायों में विभाजित हैं ।

**गीता का शब्दार्थ –**

'गै गाने' धातु से भूतकाल में निष्ठाप्रत्यय 'क्त' तथा स्त्रीलिंगी 'टाप्' प्रत्यय करने पर गीता शब्द निष्पन्न होता है । जिसका अर्थ है गाई गई या कही गई । महाभारत युद्ध के समय युद्ध का परित्याग करने की इच्छा पर अर्जुन को श्रीकृष्ण ने जो उपदेश दिया वही गीता है –

**समापोढेष्वनीकेषु कुरुपाण्डवयोर्मृधे ।**
**अर्जुने विमनस्के च गीता भगवता स्वयम् ॥ (महाभारत, शान्तिपर्व – 348.8)**

गीता के महत्त्व को बताते हुए कहा है कि समस्त उपनिषदें गायें हैं, उसके दुहने वाले गोपालनन्दन श्रीकृष्ण है, अर्जुन बछड़ा है और विद्वान् गीतारूपी महान् अमृत का पान करने वाले हैं –

**सर्वोपनिषदो गावः दोग्धा गोपालनन्दनः**
**पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥ – गीता माहात्म्यम्**

## 6.3 इन्द्रियों का अभिप्राय

### 6.3.1 इन्द्रिय शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ

"इन्द्र" शब्द से "घ" अथवा "इय" प्रत्यय द्वारा इन्द्रिय शब्द की निष्पत्ति है जिस के लिए पाणिनि की इस प्रकार की व्यवस्था है –

**इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा।(पाणिनि सूत्र 5/2/93)**

इस सूत्र के अनुसार इन्द्रिय वह पदार्थ है जो इन्द्र का लिंग अथवा इन्द्र द्वारा दृष्ट, सृष्ट, जुष्ट या दत्त हो। यहाँ काशिकाकार ने इन्द्र से 'आत्मा' अर्थ लिया है। गोपथ ब्राह्मण में कहा है –

**यन्मनः स इन्द्रः (गोपथ ब्राह्मण 2/4/11)**

मन इन्द्र है। इस प्रकार मन के द्वारा सेवित पदार्थों का इन्द्रियत्व प्रमाणित होता है और ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों की सृष्टि में भी मन का हाथ माना गया है ।

## 6.3.2 गीता में इन्द्रिय का अभिप्राय

गीता में इन्द्रियों को मानसिक द्वन्द्वों का कारण माना गया है । यद्यपि इन्द्रियाँ मन के अधीन हैं किन्तु विषयों से पुरुष का राग निवृत्त न होने के कारण ये विवेकी पुरुष के मन को भी बलपूर्वक विषयों की ओर घसीट ले जाती हैं –

**यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।**
**इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ (गीता – 2/60)**

इन्द्रियों को मनुष्य के मन को झकझोर देने वाली या मथ देने वाली कहा है क्योंकि जब तक विषयों में आसक्ति बनी रहती है तब तक इन्द्रियाँ मनुष्य के मन को बार–बार विषय सुख का प्रलोभन देती रहती हैं । इन्द्रियाँ विवेकशील पुरुष के मन को भी हरने वाली होती है ।

गीता में बताया है कि बुद्धि मन से भी श्रेष्ठ है और मन उसके अधीन है । परन्तु जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं कर पाते उसकी बुद्धि अपने वास्तविक स्वरूप अध्यवसायात्मक रूप में नहीं रहती अतः ऐसे पुरुष की बुद्धि को भी इन्द्रियानुगामी मन विषयों की ओर खींच लेता है–

**इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।**
**तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ (गीता – 2/67)**

गीता में कहा गया है कि जो मूढचित्त पुरुष कर्मेन्द्रियों को संयत कर मन से इन्द्रियों के विषयों का स्मरण करता रहता है वह मिथ्याचारी है किन्तु जो इन्द्रियों को मन से संयत कर कर्मेन्द्रियों द्वारा अनासक्त कर्मयोग करता है वह विशिष्ट है । यहाँ "इन्द्रिय" शब्द से बुद्धीन्द्रिय का अर्थ लेने से उनकी प्रधानता प्रकट होती है –

**कर्मेन्दियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्**
**इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते (गीता –3/6)**

यहाँ कर्मेन्द्रियाणि पद का अभिप्राय पाँच कर्मेन्द्रियों (वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा) से ही नहीं हैं, प्रत्युत इनके साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियों (श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण) से भी है । गीता में कर्मेन्द्रियों के अन्तर्गत ही ज्ञानेन्द्रियाँ मानी गयी हैं । इसलिये गीता में 'कर्मेन्द्रिय' शब्द तो आता है पर 'ज्ञानेन्द्रिय' शब्द कहीं नहीं आता ।

**इन्द्रियाँ विषयों से श्रेष्ठ हैं – ( इन्द्रियाणि पराण्याहु : । गीता – 3/42)**

शरीर अथवा विषयों से इन्द्रियाँ श्रेष्ठ है । तात्पर्य यह है कि इन्द्रियों के द्वारा विषयों का ज्ञान होता है, पर विषयों के द्वारा इन्द्रियों का ज्ञान नहीं होता । इन्द्रियाँ विषयों को प्रकाशित करती हैं । इन्द्रियाँ व्यापक हैं और विषय व्याप्य हैं अर्थात् विषय इन्द्रियों के अन्तर्गत आते हैं, पर इन्द्रियाँ विषयों के अन्तर्गत नहीं आतीं । विषयों की अपेक्षा इन्द्रियाँ सूक्ष्म हैं । इसलिए विषयों की अपेक्षा इन्द्रियाँ श्रेष्ठ, सबल, प्रकाशक, व्यापक और सूक्ष्म हैं ।

### 6.3.3 दार्शनिक सम्प्रदाय मत में इन्द्रिय

- तर्कभाषाकार केशव मिश्र ने इन्द्रिय का लक्षण इस प्रकार किया है –

**शरीरसंयुक्तं ज्ञानकरणमतीन्द्रियम् इन्द्रियम् ।**

जो शरीर से संयुक्त हो, ज्ञान का करण हो और अतीन्द्रिय हो, उनको इन्द्रिय कहते है।

- सांख्य दर्शन के अनुसार जिसकी अभिव्यक्ति में सात्त्विक अहंकार उपादान कारण हो वह इन्द्रिय है।
- मन, ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ इन्द्र अर्थात् पुरुष के लिङ्ग होने के कारण इन्द्रिय कहलाती हैं । वाचस्पति मिश्र ने भी इन्द्रिय का आशय आत्मा का ज्ञापक ही माना है।
- जैन आचार्यों ने आत्मा के लिंग को इन्द्रिय कहा है । इन्द्रियाँ आत्मा के अस्तित्व की परिचायक के साथ–साथ आत्मा के द्वारा होने वाले संवेदन की साधन भी हैं।
- बौद्ध के अनुसार इन्द्रियाँ गोलक हैं और विभिन्न प्रकार के परमाणुओं से निर्मित होने के कारण भौतिक हैं।

## 6.4 इन्द्रियों की संख्या

श्रीमद्भगवद्गीता में इन्द्रियों की संख्या ग्यारह बताई गई हैं –

**इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः (गीता – 13/5)**

**दश इन्द्रियाणि**– श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण –ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं जिनसे व्यक्ति को विषयों का ज्ञान होता है । तथा वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ और पायु – ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं क्योंकि इनका कर्मों की ओर झुकाव होता है ।

**एकं च**–और एक मन जो कि संकल्प–विकल्पात्मक है । मन को उभयात्मक इन्द्रिय कहा गया है क्योंकि यह ज्ञानेन्द्रिय भी है और कर्मेन्द्रिय भी ।

**इन्द्रियगोचराः**–इन्द्रियों द्वारा जो ग्राह्य स्थूल विषय हैं – शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन्हीं का वाचक यह 'इन्द्रियगोचराः' पद है ।

**इन्द्रियाणि मनश्चास्मि। (गीता – 10/22)**

नेत्र, कान आदि सब इन्द्रियों में मन मुख्य है । सब इन्द्रियाँ मन के साथ रहने से मन को साथ में लेकर ही काम करती हैं । मन साथ में न रहने से इन्द्रियाँ अपना काम नहीं करती । यदि मन का साथ न हो तो इन्द्रियों के सामने विषय आने पर भी विषयों का ज्ञान नहीं होता । मन में यह विशेषता भगवान् श्रीकृष्ण से आयी है । इसलिए गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते है कि मैं इन्द्रियों में मन हूँ ।

अतः इस प्रकार गीता में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण), पाँच कर्मेन्द्रियाँ (वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा) और संकल्प–विकल्पात्मक मन को मिलाकर इन्द्रियों की संख्या ग्यारह मानी गयी हैं ।

- उपनिषदों में इन्द्रियों की संख्या कहीं सात, कहीं नौ एवं कहीं ग्यारह कही गई हैं – पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ और मन । विवेकचूडामणि में आचार्य शंकर

ने इन्द्रियों की संख्या दस बताई हैं – श्रवण, त्वचा, नेत्र, घ्राण और जिह्वा ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, क्योंकि इनसे विषयों का ज्ञान होता है तथा वाक्, पाणि, पाद, गुदा और उपस्थ – ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं क्योंकि इनका कर्मों की ओर झुकाव होता है।

- न्याय–वैशेषिक दर्शन में इन्द्रियों की संख्या छह है – घ्राण, रसना, चक्षु, त्वक्, श्रोत्र– ये पाँच तो बाह्येन्द्रियाँ हैं, और मन आभ्यन्तर इन्द्रिय है जिसे अन्तःकरण कहते हैं।
- सांख्यदर्शन के अनुसार इन्द्रियों की संख्या ग्यारह है – पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, और मन।

## 6.5 इन्द्रियों का स्वभाव

भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रियों के स्वभाव का वर्णन करते हुए कहते है कि हे अर्जुन! इन्द्रियाँ इतनी प्रबल तथा वेगवान् हैं कि वे उस विवेकी पुरुष के मन को भी बलपूर्वक हर लेती हैं। इन्द्रियों को केवल कृष्ण की भक्ति के बल से वश में किया जा सकता है । श्रीकृष्ण कहते है कि जो इन्द्रियों को पूर्णतया वश में रखते हुए इन्द्रिय–संयमन करता है और अपनी चेतना को मुझ में स्थिर कर देता है, वह मनुष्य स्थिरबुद्धि कहलाता है ।

**तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।**
**वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ गीता – 2/61**

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते है – साधक को सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके समाहितचित्त हुआ मेरे परायण होकर ध्यान में बैठे क्योंकि जिस पुरुष की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में बताया गया है कि आत्मसिद्ध व्यक्ति की कसौटी यह है कि वह अपनी योजना के अनुसार इन्द्रियों को वश में कर सके, किन्तु अधिकांश व्यक्ति अपनी इन्द्रियों के दास बने रहते हैं और इन्द्रियों के कहने पर चलते हैं । इन्द्रियों की तुलना विषैले सर्प से की गई है । इन्द्रियाँ अत्यन्त स्वतंत्रतापूर्वक तथा बिना किसी नियन्त्रण के कर्म करना चाहती हैं । योगी या भक्त को इन इन्द्रिय–रूपी सर्पों को वश में करने के लिए एक सपेरे की भाँति अत्यन्त प्रबल होना चाहिए । इन्द्रियभोग पर संयम के बिना कृष्णभावनामृत में स्थिर हो पाना असम्भव है। श्रीमद्भगवद्गीता में इन्द्रियों का कछुए के दृष्टान्त के माध्यम से इस प्रकार वर्णन किया गया है –

**यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।**
**इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ (गीता– 2/58)**

जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को संकुचित करके खोल के भीतर कर लेता है, उसी तरह जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को इन्द्रिय–विषयों से खींच लेता है, वह पूर्ण चेतना या ज्ञाननिष्ठा में दृढ़तापूर्वक स्थिर हो जाता है।

**विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।**
**रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ (गीता –2/59)**

**अन्वयः**– निराहारस्य देहिनः विषयाः विनिवर्तन्ते। परं दृष्ट्वा अस्य रसवर्जं रसः अपि निवर्तते॥

**शब्दार्थ**– निराहस्य = इन्द्रियों के द्वारा विषयों (आहार) को ग्रहण न करने वाले, देहिनः = मनुष्य के, विषयाः – रूपरसादि विषय, विनिवर्तन्ते = निवृत्त हो जाते हैं, परम् = परमतत्त्व (परमात्मा) को, दृष्ट्वा = देखकर, अस्य – इस स्थितप्रज्ञ मनुष्य का, रसवर्जम् – रस मात्र को छोड़कर, रसः = रस या राग, अपि = भी, निवर्तते = छूट जाता है।

**हिन्दी अर्थ**– इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण न करने वाले पुरुष के भी केवल रूपरसादि विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परन्तु उनमें रहनेवाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती । इस स्थितप्रज्ञ पुरुष की आसक्ति परमात्मा का साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है ।

**व्याख्या– विषया विनिवर्तन्ते निराहास्य देहिनः रसवर्जम्** – मनुष्य निराहार दो प्रकार से होता है –

1) अपनी इच्छा से भोजन का त्याग कर देना अथवा बीमारी आने से भोजन का त्याग हो जाना।
2) सम्पूर्ण विषयों का त्याग करके एकान्त में बैठना अर्थात् इन्द्रियों को विषयों से हटा लेना ।

यहाँ इन्द्रियों को विषयों से हटाने वाले साधक के लिए ही निराहारस्य पद आया है।

**रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते** – इस स्थितप्रज्ञ की रसबुद्धि परमात्मा का अनुभव हो जाने पर निवृत्त हो जाती है। रसबुद्धि निवृत्त होने से वह मनुष्य स्थितप्रज्ञ हो जाता है।

**टिप्पणी** –

देहिन इन = देहिन् का षष्ठी विभक्ति, एकवचन।

रसवर्जम् – रस + वर्जम् (वृज् + णमुल् – वर्जम् अव्यय है ।) वर्जयित्वा के स्थान पर वर्जम् का प्रयोग प्रायः समास में होता है ।

छन्द – अनुष्टुप

**यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।**
**इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ (गीता – 2/60)**

**अन्वय**– कौन्तेय हि यततः विपश्चितः पुरुषस्य अपि मनः प्रमाथीनि इन्द्रियाणि प्रसभम् हरन्ति।

**शब्दार्थ**– कौन्तेय = कुन्तीपुत्र ! हे अर्जुन !, हि = जिस कारण से, यततः = प्रयत्न करते हुए, विपश्चितः = बुद्धिमान्, पुरुषस्य = मनुष्य के, अपि = भी, मनः – मन को, प्रमाथिनी = प्रकृष्टरूप से मथ देने वाली, इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँ, प्रसभम् = बलपूर्वक, हरन्ति = हर लेती है ।

**हिन्दी अर्थ** –हे अर्जुन ! बुरी तरह से झकझोर देने वाली इन्द्रियाँ यत्न करते हुए विवेकयुक्त पुरुष के मन को भी जबरदस्ती विषयों में घसीट ले जाती हैं, विवेकहीन पुरुषों की तो फिर बात ही क्या है?

**व्याख्या**– इन्द्रियों को यत्न करते हुए विवेकशील मनुष्य के भी मन को हरने वाली कहा है । जो व्यक्ति शास्त्र के स्वाध्याय से विषयों के दोषों को जान लेता है वह विवेकी है । विवेकी पुरुष उपासनादि कर्मों से अपनी इन्द्रियों को अपने वश में करके नियन्त्रित रखता है । प्रमथनशील इन्द्रियाँ विद्वान् पुरुषों के मन को बलपूर्वक हर लेती है ।

**टिप्पणी**–

कौन्तेय – कुन्ती + ढक् (अपत्य अर्थ में तद्धित प्रत्यय) ।

इन्द्रियाणि – 'इन्द्रिय' शब्द का प्रथमा, बहुवचन (नपुंसकलिंग) ।

यततः – यत् + शतृ (अत्) षष्ठी विभक्ति, एकवचन, पुल्लिंग ।

विपश्चितः – 'विपश्चित्' का षष्ठी विभक्ति, एकवचन ।

मनः – 'मनस्' का द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

हरन्ति– हृ + लट्, प्रथम पुरुष बहुवचन ।

छन्द – अनुष्टुप

**रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।**
**आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥ (गीता – 2/64)**

**अन्वय**– विधेयात्मा तु आत्मवश्यैः रागद्वेषवियुक्तैः इन्द्रियैः विषयान् चरन् प्रसादम् अधिगच्छति।

शब्दार्थ – विधेयात्मा = अन्तःकरण या बुद्धि सेवक बन गई जिसकी अर्थात् जो बुद्धि पूर्वक निर्णय लेने में समर्थ है ऐसा व्यक्ति, आत्मवश्यै = अपने या बुद्धि के वश में चलने वाली, रागद्वेषयुक्तैः = राग एवं द्वेषादि विकारों से रहित, इन्द्रियैः = इन्द्रियों के द्वारा, विषयान् = विषयों में, चरन् = घूमता हुआ, प्रसादनम् = प्रसन्नता को, अधिगच्छति = प्राप्त कर लेता है।

**हिन्दी अर्थ**– जो बुद्धिपूर्वक निर्णय लेने में समर्थ है ऐसा व्यक्ति अपने नियन्त्रण में रहने वाली तथा राग द्वेषादि विकारों से रहित, इन्द्रियों के द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ भी प्रसन्नता को प्राप्त कर लेता है।

**विधेयात्मा**– विधेयात्मा पद अन्तःकरण को वश में करने के अर्थ में आया है । साधक का अन्तःकरण अपने वश में रहना चाहिए । अन्तःकरण को वशीभूत किये बिना कर्मयोग की सिद्धि नहीं होती ।

**आत्मवश्यैः रागद्वेषवियुक्तैः इन्द्रियैः**– यहाँ पर आत्मवश्यैः पद इन्द्रियों को वश में करने के अर्थ में आया है । व्यवहार करते समय इन्द्रियाँ अपने वशीभूत होनी चाहिये और इन्द्रियाँ वशीभूत होने के लिए इन्द्रियों का राग–द्वेषरहित होना आवश्यक है । जो साधक राग–द्वेषादि द्वन्द्वों से रहित हो जाता है, वह सुखपूर्वक मुक्त हो जाता है ।

**विषयान् चरन्** – जिसका अन्तःकरण अपने वश में है और जिसकी इन्द्रियाँ राग–द्वेष से रहित है, ऐसा साधक इन्द्रियों से विषयों का सेवन तो करता है, पर विषयों का भोग नहीं करता । भोगबुद्धि से किया हुआ विषय सेवन पतन का कारण होता है ।

**प्रसादमधिगच्छति**– राग–द्वेष रहित होकर विषयों का सेवन करने से साधक अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है ।

**व्याकरणिक टिप्पणी**–

राग–द्वैष–वियुक्तैः – रागश्च, द्वेषश्च (द्वन्द्व समास) ।

रागद्वेषौ ताभ्याम् वियुक्तैः (तत्पुरुष समास) ।

आत्मवश्यैः – आत्मना वश्यैः (तत्पुरुष समास) ।

इन्द्रियैः – इन्द्रिय का तृतीया विभक्ति, बहुवचन ।

विषयान् – विषय का द्वितीया विभक्ति, बहुवचन ।

चरन् – चर + शतृ (अस्), पुलिंग, प्रथमा, एकवचन ।

अधिगच्छति – अधि + गम्, लट् लकार, प्रथम पुरुष, पुलिंग, एकवचन।

विधेयः – वि उपसर्ग + धा + यत् ।

प्रसादम् – प्र + सद् + घञ् ।

छन्द – अनुष्टुप ।

**इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।**
**तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥ (गीता – 2/67)**

**अन्वय**– हि चरताम् इन्द्रियाणां यत् मनः अनुविधीयते। तत् अस्य प्रज्ञां वायुः अम्भसि नावम् इव हरति।

**शब्दार्थ** – हि = जिस कारण से, चरताम् = विषयों में विचरण करती हुई, इन्द्रियाणां = इन्द्रियों के मध्य में, यत् = जो, मनः = संकल्पविकल्पात्मक मन, अनुविधीयते = इन्द्रियों का अनुसरण करता रहता है, तत् = वह मन, अस्य = इस पुरुष की, प्रज्ञाम् = बुद्धि को, वायुः = हवा, अम्भसि = पानी में, नावम् = नौका के, इव = समान, हरन्ति = हर लेती है।

**हिन्दी अर्थ**– जिस प्रकार जल में चलने वाली नौका अपने अनुसार वायु प्रवाह से विपरीत दशा में खींच लेती है वैसे ही विषयों मे विचरण करती हुई इन्द्रियों के पीछे जो मन जाने लगता है वह मन ही अयोग्य पुरुष की बुद्धि को हर लेता है ।

**व्याकरणिक टिप्पणी**–

चरताम् – चर + शतृ (अत्) नपुंसकलिंग, षष्ठी, बहुवचन ।

अम्भसि– 'अम्भस्' शब्द का सप्तमी विभक्ति, एकवचन ।

हरति– हृ + लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन।

नावम् – नौ द्वितीया बहुवचन ।

अणु – अनुहीते सहार्थे च इति विश्वः ।

विधीयते – वि + धा + यक् + लट् + त (भाववाच्य)

छन्द – अनुष्टुप

## 6.6 सारांश

- गीता का सामान्य परिचय प्राप्त हुआ।
- इन्द्रिय के व्युत्पत्तिपरक अर्थ का बोध हुआ।
- गीता में इन्द्रिय शब्द का अर्थ स्पष्ट हुआ तथा अन्य भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों में इन्द्रिय के अर्थ को जाना।
- गीता में इन्द्रियों की संख्या का ज्ञान हुआ।
- गीता में इन्द्रिय स्वभाव से सम्बन्धित श्लोकों के बारे में जानकारी प्राप्त हुई।

## 6.7 शब्दावली

विमूढात्मा – मूढ़ बुद्धि पुरुष

स्मरन् – चिन्ता करता हुआ

संयम्य – रोककर

प्रस्थानत्रयी – श्रुतिप्रस्थान, स्मृतिप्रस्थान, न्यायप्रस्थान

गोचराः – ज्ञानेन्द्रियों के पाँच विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध)

संयमन – इन्द्रिय–नियन्त्रण

विषय – शब्द–स्पर्श–रूप–रस–गन्ध

अन्तःकरण – मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार

## 6.8 कुछ उपयोगी पुस्तक

1. श्रीमद्भगवद्गीता, राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, २००६
2. श्रीमद्भगवद्गीता (साधक–संजीवनी) हिन्दी टीका, स्वामी रामसुखदास, गीताप्रेस गोरखपुर, सं० २०७१
3. गीता में आत्मप्रबन्धन, विनोद कुमार, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, २०१२
4. ईशादि नौ उपनिषद्, शाङ्करभाष्यार्थ, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. २०६६
5. भारतीय–दर्शन–बृहत्कोश, बच्चूलाल अवस्थी, शारदा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, २००४

## 6.9 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1. गीता में इन्द्रिय शब्द का अर्थ क्या है?
2. पाँच ज्ञानेन्द्रियों के नाम लिखिए ।
3. पाँच कर्मेन्द्रियों के नाम लिखिए ।
4. गीता के अनुसार इन्द्रियों की संख्या कितनी है?

5. गीता के अनुसार इन्द्रियनिग्रह क्या है?

बोध प्रश्न – 2

1. गीता के अनुसार इन्द्रिय स्वभाव का विवेचन कीजिए ।

**अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –**

**बोध प्रश्न – 1**

1. गीता में इन्द्रिय को विवेकशील मनुष्य के मन को हरने वाली कहा है ।
2. श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण – ये पाँच ज्ञार्नेन्द्रियाँ है ।
3. वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ – ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ है ।
4. गीता में इन्द्रियों की संख्या एकादश मानी गयी हैं ।
5. गीता के अनुसार अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इन्द्रियों को सांसारिक विषयों से हटाना इन्द्रिय–निग्रह कहलाता है ।

**बोध प्रश्न – २**

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखे ।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY